Artistic Narration, Vol. VIII, 2017, No. 2: ISSN (P) : 0976-7444 (e) : 2395-7247*Impact Factor 3.9651 (ICRJIFR)*
UGC Approved Journal No. 43285

कला में सौन्दर्यगत रूप संयोजन

डॉ0 किरण प्रदीप
अध्यक्षा, विसुअल आर्ट, ड्राइंग एंड पेंटिंग विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ0 किरण प्रदीप,
"कला में सौन्दर्यगत रूप संयोजन",
Artistic Narration 2017,
Vol. VIII, No.2, pp.57-68
http://anubooks.com/?page_id=485

सारांश

सौन्दर्य जीवन का एक महत्वपूर्ण तथ्य है परन्तु सौन्दर्य का अर्थ क्या है इस सम्बन्ध में कई विद्वानों के बहुत विचार तथा मतभेद हैं। संस्कृत के विद्वानों के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी जाती है कि *'सुन्द' राति इति सुन्दरम् तस्य भावो सौंदर्यम्'* अर्थात् जो 'सुन्द' को लाता है वह सुन्दर और जहाँ उसका भाव होगा वह सौन्दर्य कहलाता है। सुन्द पूर्वक 'रा' (धातु) अर्थात् 'आदाने' लाना (धातु) से औणादिक 'अच' प्रत्यय से सुन्दर शब्द् तथा गुण वचन 'ब्रह्माणिदिभ्यः ण्यच्'' इस पाणिनी सूत्र से ण्यञ् प्रत्योपरान्त सौन्दर्य शब्द उत्पन्न हुआ। वाचस्पतय कोष में सुन्दर शब्द को 'सु' उपवर्ग (उन्द) धातु से 'अरन्' प्रत्यय जोड़कर सिद्ध किया गया है। भारतीय दर्शन में सत्यं शिवं सुन्दरम् के रूप में सौन्दर्य की कल्पना की गयी हैं। सौन्दर्य के साथ कला की कल्पना स्वाभिवक है। संस्कृत भाषा में प्रयुक्त 'कला' शब्द पर विभिन्न विद्वानों के मतभेद हैं।

कला में सौन्दर्यगत रूप संयोजन

डॉ0 किरण प्रदीप

कला शब्द 'कल्' धातु से बना हैं जिसका अर्थ है प्रेरित करना अर्थात् सृजन की प्रेरणा देने वाला। कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति 'कड्' धातु से मानते हैं जिसका अर्थ है खुश करना। अमरकोश के अनुसार इसकी व्युत्पति 'क' धातु से हुई है– कं (सुखम्) लाति इति कलम्। भरत मुनि से पहले कला शब्द के स्थान पर शिल्प शब्द का ही प्रचार था। कुछ स्थानों पर संगीत के क्षेत्र में शिल्प का प्रयोग किया गया है जैसे 'कौशीतकी ब्राहमण' मे। प्राचीन काल में कला को शिल्प के नाम से जाना जाता था। किन्तु आज शिल्प का प्रयोग 'क्राफ्ट्स' के लिए होता है जिसमें उपयोगी वस्तुओं को निर्मित किया जाता है। शिल्प में साधारणतः शिक्षा की आवश्यकता नहीं होती वह कोई भी कर सकता है। इसका तकनीकी ज्ञान प्रयोगात्मक विधि से आ जाता है। शिल्प कला को उपयोगी कला भी कह सकते हैं। दूसरी ओर पाणिनी ने अपने अष्टाध्यायी में शिल्प शब्द का प्रयोग उपयोगी तथा ललित दोनों कलाओं के लिए किया है। कामसूत्र में 64 कलाओं का वर्णन मिलता है जिसमें ललित तथा उपयोगी दोनों प्रकार की कलाओं की गणना की गयी है। कुछ विद्वान् तीन कलाओं को मानते हैं 1. संगीत, 2. काव्य तथा 3. चित्र। इन विद्वानों का वर्गीकरण इस बात पर निर्भर है कि तीनों कलाओं का आधार भाव तथा रस है और इनमें से भी काव्य को उत्कृष्ट माना है क्योंकि वे मानते हैं कि रस की सबसे अधिक अभिव्यक्ति काव्य में ही सम्भव है। हीगल ने भी अपने वर्गीकरण में काव्य को ही सर्वश्रेष्ठ माना है परन्तु कलाओं को तीन न मान पाँच माना है और काव्य, चित्र, संगीत, कलाओं के साथ–साथ वास्तु कला और मूर्तिकला को भी सम्मिलित किया है। इसमें वास्तुकला को उन्होंने निम्न श्रेणी में रखा है क्योंकि उनके अनुसार उसमें स्थूलता अधिक है। हीगल का यह वर्गीकरण 'हिगेलियन क्लासिफिकेशन ऑफ फाइन आर्ट्स' के नाम से जाना जाता है। कलाओं की विशिष्ट्ता के अनुसार उन्होंने इसे इस क्रम में रखा है–

1. काव्य, 2. संगीत, 3. चित्रकला, 4. मूर्तिकला तथा 5. वास्तुकला।

इस वर्गीकरण में अतिरिक्त विद्वानों ने कला को व्यावसायिक तथा ललित कला को दो प्रमुख भागों में बाँटा है। व्यावसायिक कलाओं का उद्देश्य उपयोगिता माना गया जो मानव के व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित है। व्यावसायिक कला में छपाई, बढ़ईगीरी, पोस्टर आदि को सम्मिलित किया गया तथा ललित कला के अन्तर्गत चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीत, और काव्य को माना। कौटिल्य काल में ललित तथा उपयोगी कलाओं को चारू तथा कारू नामों से जाना गया। ललित कला से आध्यात्मिक सुख तथा उपयोगी कला से भौतिक सुख प्राप्त होता है, जिस प्रकार उपयोगी कलाओं के भेद हैं उसी प्रकार ललित कला के भी दो भेद माने गए हैं जिसका वर्गीकरण रूप के आधार पर किया गया है। g –रूपप्रद कलाएं, h – अरूपप्रद कलाएं, रूपप्रद कलाओं के अन्तर्गत वे कलाएं आती हैं जिसका कोई चाक्षुश रूप होता है। इन्हें कुछ विद्वानों ने मूर्तकला भी माना है। अरूपप्रद कलाएं वह हैं जिनका रूप चाक्षुश नहीं होता वरन् भाव अनुभव होता है जैसे संगीत और काव्य। संगीत में स्वरों के

आरोह–अवरोहात्मक क्रम में संगीतज्ञ अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है जबकि साहित्यकार काव्य में शब्दों के माध्यम से पाठक को रसास्वादन कराता है। इन कलाओं को कुछ विद्वानों में अमूर्त कला भी माना है लेकिन यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि आधुनिक कला में चित्रकला तथा मूर्तिकला में भी अमूर्त रूपों को देखा जा सकता है जिसे सूक्ष्म कला के नाम से जाना जाता है। कला रचना मे कलागत तत्व का महत्वपूर्ण योगदान माना जाता है। जिस प्रकार साहित्य में शब्द और अर्थसार रचना को प्रभावशाली बनाकर भावाभिव्यंजना में सहायक होते हैं। उसी प्रकार चित्र रचना में कलागत तत्व अर्थात् सार के बिना अभिव्यक्ति अपूर्ण है। कलाकार के भाव, कल्पना, संवेग, अमूर्त होते हैं जिन्हें मूर्त रूप प्रदान करने के लिए रेखा, रंग, रूप जैसे मूलाधारों का आश्रय लिया जाता है। रेखा चित्र का प्रथम आधार होने के साथ–साथ रूप के निर्माण में सहयोग देती है और रंग उसे सरस बनाकर ज्योतिर्मय आवरण से आच्छादित कर देते हैं। प्रत्येक तत्व का निजी महत्व होता है जिसके कुशलता पूर्वक प्रयोग से कलाकार अपनी पहचान बनाता है। किसी भी चित्र का प्रथम आधार उसकी रूप संरचना है और वह रूप संरचना रेखाओं के द्वारा ही सम्भव है तत्पश्चात् इसमें रंग भरना शामिल है, जिसमें विविध तान तथा पोत का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि रेखा, रूप, रंग, तान, पोत एक दूसरे में सम्बन्धित हैं जिनकी रचना अन्तराल में की जाती है। रेखा प्रारम्भ से चित्रकला के मूलाधार के रूप में मानी जाती है। सर्वप्रथम आदि मानव ने रेखा का प्रयोग आत्माभिव्यक्ति हेतु किया। सम्भवतः अपनी छाया की वाह्य रेखा से उसे रेखा का ज्ञान हुआ होगा जिससे रेखा का सौन्दर्य समक्ष आ सका। बाइजेन्टाइन और प्राचीन ग्रीक कलाकारों ने रेखा को महत्व दिया। इसी प्रकार प्राचीन मिस्र की कला में भी रेखा को महत्वपूर्ण माना गया। भारत में रेखा का सौन्दर्य सर्वत्र दिखायी देता है क्योंकि भारतीय कला यथार्थ के स्थान पर आदर्श कल्पना पर आधारित है।

कला पक्ष के अन्तर्गत रेखा का प्रतीकात्मक महत्व है। भले ही रेखा किसी प्रकार खींची जाए उसमें एक अर्थ निहित होता है। जहाँ एक ओर इनके माध्यम से दूरी तथा निकटता को प्रकट किया जा सकता है वहीं दूसरी ओर इनके माध्यम से शाश्वत्ता, आकांक्षा, विश्राम, व्याकुलता, शान्ति, लवलीनता, गति आदि कितने ही भावों को मूक रहते हुए भी प्रकट किया जा सकता है। स्पष्ट तथा सुदृढ़ रेखाएं अग्रभूमि में चित्रित की जाती हैं तथा पृष्ठभूमि में दूरी दर्शाने हेतु रेखाओं को धूमिल तथा अस्पष्ट कर दिया जाता है। शान्त वातावरण के लिये कलाकार क्षैतिज रेखाओं को माध्यम बनाता है किन्तु यदि वह अशान्त वातावरण को प्रस्तुत करना चाहता है तो कर्णवत् तथा कोणीय रेखाओं का प्रयोग करता है क्योंकि इस प्रकार की रेखाएं अंशात तथा व्याकुलता के प्रभाव को प्रकट करने में सहायक हैं। रेखा अपने गुणों के कारण संयोजन को भी प्रभावित करती है। रेखा के अन्य गुणों के साथ–साथ उसमें यह गुण भी है कि वह आकार को परिधि से बाँधती है तथा अन्तराल को विभिन्न तलों में

विभाजित करती है। इसके अतिरिक्त वह विचार या प्रतीक को भी परिभाषित करती है। यदि लम्बवत् रेखाओं को ध्यानपूर्वक देखा जाय तो वह गौरव, सादगी आदि भावों को प्रदर्शित करती हैं। चित्र में रेखा का बहुत महत्व है जहाँ एक ओर वह रूप का निर्माण करती है। वहीं कलाकार की भावनाओं को भी स्वतन्त्रता पूर्वक प्रस्तुत करती है। सरल रेखा में शान्ति है तो प्रवाही रेखाओं में गति, लावण्य और मधुरता। विभिन्न आकारों की रेखाओं के माध्यम से कलाकार इच्छित प्रभावों की सृष्टि कर सकता है। रेखा द्वारा विविध प्रकार के पोतों को सृजित कर विभिन्नता तथा मौलिकता भी उत्पन्न की जा सकती है। रेखीय क्षयवृद्धि के द्वारा किसी भी वस्तु या आकार में दूरी का प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। यहाँ तक कि रेखाओं में दिशा निर्देशन की शक्ति भी है इसी कारण दर्शक की दृष्टि विभिन्न रेखाओं का अनुसरण करते हुए वहाँ तक पहुँच जाती है जहाँ कलाकार उसे पहुँचाना चाहता है। दुःख के भावों में रेखाओं को शिथिल तथा क्षितिजवत् बनाया गया है। कम्पनी शैली में कलाकारों का चित्रण यथार्थ के समीप होने के कारण रेखा को कम ही महत्व दिया गया है और आधुनिक समय में प्रत्येक कलाकार की अभिव्यक्ति निजी होने से प्रत्येक कलाकार अपनी नयी तकनीक की खोज में लगा है। कुछ कलाकार रेखा को महत्व दे रहे हैं कुछ नहीं। बहुत से ऐसे कलाकार भी हैं जो मात्र रेखांकन के माध्यम से ही आत्माभिव्यक्ति कर रहे हैं इनमें पेन, पेंसिल, चारकोल, स्याही आदि का प्रयोग किया गया है। रेखांकन के लिए पाश्चात्य देशों में 'ड्राइंग' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। रूप एक ऐसा क्षेत्र होता है जिसका निश्चित आकार तथा वर्ण होता है। रूप छोटे–छोटे बिन्दुओं से बनता है। यदि यह छोटे–छोटे बिन्दु बिखरी हुई अवस्था में होंगें तो कोई रूप नहीं होगा किन्तु आपस में निश्चित आकार में जुड़ जाने पर वह रूप का निर्माण करते हैं। इन बिन्दुओं को सभी दिशाओं में आवश्यकतानुसार रखा जाता है क्योंकि यदि एक ही दिशा में बिन्दु लगाए जाऐगें तो रेखा का निर्माण होता हैं। कलाकार जो भौतिक चक्षु से देखता है उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसके मानस पटल पर कई प्रकार के रूप या बिम्ब उभरते हैं। उन बिम्बों को वह पट पर साकार करता है। यह बिम्ब वाह्य सादृश्य के आधार पर यथार्थ भी हो सकते हैं और अमूर्त भी। जहाँ बिम्ब वाह्य रूपों से मेल रखते है वहाँ वस्तुओं का त्रि–आयामी प्रभाव विद्यमान रहता है और जहाँ बिम्ब कल्पना पर आधारित होते हैं वहाँ अभिव्यक्ति प्रमुख होने पर रचनात्मक शैली पनपती है दोनों प्रकार की अभिव्यक्ति में रूप का महत्व है। नवीन रूपों में प्रत्येक के अपने प्रभाव तथा अर्थ होते हैं। अन्तराल में क्षैतिज दिशा में चित्रित आयत स्थिरता तथा शान्ति का प्रभाव तथा लम्बवत् रूप में चित्रित आयत आकांक्षा की ओर इंगित करता है। इसी प्रकार त्रिभुजाकार रूपों में जिनके नीचे की भुजा क्षैतिज तथा दो भुजाएं ऊपर की ओर जाती कर्णवत् होती हैं, उर्ध्वगति का आभास होता है। ऐसे रूप एक ऊँचाई की ओर इंगित करते हैं जैसे मन्दिर तथा गिरजाघर के गुम्बद दोनों ही के त्रिभजाकार रूप आध्यात्मिक शक्ति की ओर इंगित करते हैं किन्तु इस रूप को विलोम दिशा में बना देने पर अधोमुखी गति का आभास होता है। इसी प्रकार अण्डाकार लावण्य तथा वृत्त पूर्णत्व के

प्रतीक रूप में जाने जाते हैं। किसी भी चित्र में दो प्रकार के रूपों का नियोजन किया जा सकता है प्रथम सक्रिय तथा दूसरा सहायक। सक्रिय रूप वह हैं जिन पर दर्शक की दृष्टि सर्वप्रथम जाती है और ऐसे रूप में मुख्य भूमिका भी निभाते हैं और सहायक रूप वह होते है जो सक्रिय रूपों के महत्व को बढ़ाने में सहायता देते हैं। दोनों ही रूपों का पृथक्–पृथक् महत्व है। सक्रिय रूपों का कार्य द्र्शक के लिए केन्द्र–बिन्दु प्रस्तुत करना है तथा सहायक रूपों का कार्य केनद्र के चारों ओर वातावरण उपस्थित करना है। रूप के दो पक्ष होते हैं एक जो दृष्टि को दिखायी देता है और एक जो अनुभव होता है अर्थात् भाव जिसे अर्थसार के नाम से जानते हैं।

मानव जीवन के साथ–साथ चित्रकला में वर्ण का महत्वपूर्ण स्थान है। संसार की प्रत्येक वस्तु कोई न कोई रंग लिए होती है। रंग मानव जीवन एवं चित्र का सार हैं। जिस प्रकार कविता के लिए शब्द, संगीत के लिय लय तथा काव्य के लिए रस की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार के चित्र के लिए रंग का होना अनिवार्य है। वर्ण प्रकाश का गुण है। प्रकाश किरणों के द्वारा हमें कोई भी रंग दिखायी देता है। किसी वस्तु के द्वारा विकीर्ण होकर जब प्रकाश आँखों में प्रवेश करता है वो रेटीना पर जाकर केंद्रित हो जाता है। रेटीना के पार्श्व में रोड्स तथा कोन्स सूक्ष्म तन्तु ग्रन्थियाँ होती हैं जो चेतन हो जाती हैं। इन तन्तु ग्रन्थियों का सम्बन्ध मानव की दृश्य चेतना से होता है इसी से रंग की अनुभूति होती है किसी वस्तु को रूप के साथ–साथ सर्वप्रथम रंगों से ही पहचाना जाता है। सभी विद्वानों ने रंगो की मान्यता को स्वीकार किया है। मानव जीवन का प्रत्येक पहलु रंगों के प्रभाव से अभिसिञ्चित् है। रंगों के मनोवैज्ञानिक प्रभाव होते हैं। प्रत्येक भाव के लिए एक निश्चित वर्ण होता है। जैसे–नीला रंग निराशा, विशालता, बैंगनी रंग राष्ट्र प्रेम, हरा रंग हरियाली, प्रसन्नता, लाल रंग क्रोध, कामुकता, उत्तेजना तथा श्वेत रंग शान्ति, शोक तथा प्रकाश का प्रभाव प्रस्तुत करता है। यदि शोक विषय को प्रस्तुत करने में कोई कलाकार लाल पीला रंग लगा देता है तो वहाँ सामन्जस्य की हानि होती है शोक विषय के लिए नीला, काला आदि रंगों को धूमिल कर ही लगाया जा सकता है। रंगों में दृष्टि को आकर्शित करने का गुण है। जहाँ एक ओर उष्ण रंग अग्रगामी होते हैं वहीं शीतल वर्ण पृष्ठगामी। इनका प्रयोग अधिकतर दूरी तथा गहरायी दर्शाने हेतु किया जाता है। इसी प्रकार रंगतें हमारी दृष्टि को भी प्रभावित करती हैं उष्ण रंगों को देखने से हमारी दृष्टि थकान का अनुभव करती हैं तथा शीतल रंग आँखों को ठंडक प्रदान करते हैं। उष्ण रंग उमंग, प्रसन्नता का वातावरण तथा शीतल रंग गम्भीर शान्त वातावरण प्रस्तुत करते हैं। विभिन्न रंगों का प्रयोग धरातल में गति भी उत्पन्न कर सकता है यदि कलाकार उसे कुशलतापूर्वक लगाता है। इसी प्रकार रंगों के द्वारा कलाकार विरोध भी उत्पन्न कर सकता है। वर्ण के गुण वर्ण के तीन गुण माने गए हैं। रंगत, मान तथा सघनता। रंग की प्रकृति को रंगत कहते हैं जैसे पीलापन, हरापन आदि। मान रंगत में हल्केपन तथा गहरेपन

का द्योतक है। श्वेत से काले की ओर रंग का परिवर्तन उसके मान को कम करता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्वेत का मान सबसे अधिक और काले का सबसे कम होता है। रंग की शुद्धता तथा चमक का परिचय सघनता से होता है जैसे शुद्ध पीला, चमकदार पीला, धुंधला पीला आदि। यदि किसी रंग का घनत्व में विविधता उत्पन्न करता है। एक वर्ण के पास दूसरा रंग लगाने पर वह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक रंग को अधिक समय तक देखने से उसके चारों ओर पूरक रंग की आभा दिखायी देने लगती है जैसे यदि लाल तथा नीला रंग पास–पास लगाया जाए तो थोड़ी देर पश्चात् लाल रंग अपने पूरक हरे तथा नीला रंग अपने पूरक नांरगी से घिरने लगता है। इसी प्रकार पृष्ठभूमि के रंग का प्रभाव भी संक्रिय रूपों के रंगों पर पड़ता है जैसे हल्के रंग की या उच्च मान वाली पृष्ठभूमि पर हल्के रंग का रूप प्रकाशित तथा गहरी पृष्ठभूमि पर अन्धकारमय प्रतीत होगा। कहीं कलाकार एक दो रंगों से कार्य करता है कहीं अधिक। कहीं वह मात्र श्वेत श्याम रंगों की विविध तानों के माध्यम से सम्पूर्ण चित्र अंकित करता है जिसे वर्ण–शून्यता कहा जाता है, (क्योंकि श्वेत एवं श्याम वर्ण Colourless Colour माने जाते हैं।) रंगों के माध्यम से ही चित्र के स्वभाव, वातावरण तथा अर्थ का ज्ञान होता है। यही कारण है कि चित्र का वर्ण नियोजन करते हुए कलाकार या तो वाह्य यथार्थ के समान रंग लगाता है या प्रतीकात्मक सादृश्य के आधार पर। यदि आज चित्रकला में रंगों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि कलाकार अपने 'मूड' के अनुरूप रंग लगा रहा है। उत्तेजना में वह लाल रंग ही नहीं लगाता वरन् हरा या नीला भी लगा देता है। रामकुमार के चित्र और उदासी का वातावरण लाल रंग से भी दर्शाया जा सकता है। उनके अनुसार वृक्षों का हरा होना आवश्यक नहीं वह लाल भी हो सकते हैं। आज कलाकार रंगों को 'मूड' के आधार पर लगाते हैं जिनमें कहीं–कहीं प्रतीकात्मकता भी लक्षित होती है।

कला रचना का एक और महत्वपूर्ण तत्त्व तान मन जाता है। तान रंगत के हल्केपन तथा गहरेपन की ओर संकेत करती है। किसी भी रंग में सफेद तथा काले रंग के मिश्रण से विभिन्न प्रकार की तान प्राप्त की जा सकती हैं। रंगीन धरातल पर प्रकाश के बराबर प्रभाव के अभाव में अनेक तान दिखायी देती हैं। कहीं प्रकाश एक समान होते हुए भी वस्तु के तल में अन्तर होने पर रंग की विभिन्न तान दिखायी देती हैं किन्तु प्रकाश के अभाव में वस्तु काली दिखायी देती है। किसी भी रंग को तान के द्वारा प्रकाश तथा अंधकार की ओर बढ़ाया जा सकता है। किसी भी रंग में सफेद रंग मिलाने पर उसकी तान प्रकाशित तथा हल्की हो जाती है तथा उसका मान बढ़ जाता है और दूसरी ओर उस रंग में काला रंग मिलाने पर उसकी तान गहरी तथा अन्धकारमय हो जाती है साथ ही उसका मान भी कम हो जाता है। इस प्रकार तान का परिवर्तन होते ही उसके साथ हल्के तथा गहरे विशेषण जुड़ जाते हैं। मान बढ़ने पर तान प्रकाशित और हल्की तथा घटने पर गहरी प्रतीक होती है। इसके लिए तान का मान शब्द प्रयुक्त किया जाता है। वैसे तो कलाकार आवश्यकतानुसार कितनी ही तानों की रचना

कर सकता है किन्तु फिर भी मुख्य रूप से तान को तीन भागों में विभाजित कर नामकरण किया गया है। 1. प्रकाशित, 2. मध्यम तथा 3. गहरी। इस प्रकार श्याम तथा श्वेत के मिश्रण से अन्य तानों को भी प्राप्त किया जा सकता है। रंग की तान में परिवर्तन करके ही वातावरणीय क्षयवृद्ध को प्रस्तुत किया जा सकता है। अग्रभूमि में स्थित रंग की तान निकटता दर्शाने हेतु प्रखर होती है किन्तु पृष्ठभूमि में दूरी दर्शाने के लिए रंग की तान धुंधली हो जाती है। दूरी पर लगायी गयी तान धुधली होने के साथ–साथ उदासीन भी हो जाती है। यदि चित्र में दो वृक्ष अंकित हैं एक अग्रभूमि में तथा एक पृष्ठभूमि में तो उनके आकारों में तो अन्तर होगा ही साथ ही साथ रंग की तान में भी अन्तर आ जाता है। पास के वृक्ष में प्रखर हरा तथा कहीं–कहीं प्रकाश हेतु पीला रंग मिश्रित कर लगाया जाता है परन्तु पृष्ठभूमि के वृक्ष में हरे में कुछ काला या नीला मिला कर उसकी धुधंली तान को लगाया जाता है। तान का एक विशेष महत्वपूर्ण गुण यह भी है कि इसके कुशल प्रयोग से आकारों में त्रि–आयामी प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। आकारों की ठोसता, उसका उभार, गहरायी आदि में छाया–प्रकाश दिखाकर उसका आयतन दर्शाया जा सकता है। इसके लिए कलाकार पृथक्–पृथक् तल में विविध तानों का प्रयोग करता है। कम्पनी शैली से भारतीय चित्रों में छाया–प्रकाश की विभिन्न तानों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया और आधुनिक समय में तो कला के क्षेत्र में इतने नए–नए प्रयोग हो रहे हैं कि इस क्षेत्र में कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते। पोत का Hkh, d dykRed dk; Zgks kgSt ksfp= jpukesa oZkl gk; d curkgSA किसी भी सतह या धरातल की बुनावट उसकी पोत कही जाती है। ईश्वर ने प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से पोत का सृजन किया है जिसके आधार पर मानव वृक्ष तथा धरती में अन्तर कर पाता है। यदि सभी उपादान पोत का ध्यान रखते हुए चित्रित न हो तो सम्भवतः आकाश–पानी, बादल–रूई और वृक्ष–जल प्रतीत होगें। इस प्रकार प्रत्येक वस्तु में अन्तर या उसकी पहचान पोत के माध्यम से होती है। पोत का अनुभव दो प्रकार से होता है। चाक्षुश और अनुभूतिजन्य। दोनों का ही अपना–अपना महत्व है अन्धा व्यक्ति पोत को देख नहीं सकता परन्तु स्पर्श से अनुभूमिजन्य सुख प्राप्त कर सकता है। प्रकृति का प्रत्येक उपादान आकार और रंग के अतिरिक्त एक पोत लिए होता है। कभी–कभी दो वस्तुओं या उपादानों के रंग एक से होते हुए भी पोत की विभिन्नता से उसके स्वरूप में भिन्नता आ जाती है। प्रकृति का कोई भी उपादान एक दूसरे से मेल नहीं रखता। पोत के साधारणतः तीन प्रकार माने गए हैं– प्राप्त, अनुकृत और सृजित। प्राप्त पोत शिला चित्रों में स्वतः आया हुआ दिखाई पड़ता है। परम्परागत लघु चित्रों में तो अनुकृत पोत का विशेष ध्यान रखा गया है परन्तु यहाँ पोत अलंकृत होकर समक्ष आया हैं। प्राप्त पोत में भित्ति, शिला, कपड़ा, ताड़पत्र आदि के माध्यम से धरातल से बुनावट स्वतः ही प्राप्त होती है, यहाँ पोत सृजन के लिए कलाकारों को विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता। तीसरे प्रकार की पोत सृजित पोत है। यह 20वीं शताब्दी की खोज है जिसमें कलाकार अपनी बुद्धि और कार्य कुशलता से नित्य नवीन प्रयोग कर पोत की रचना

में जुटा है। आधुनिक भारतीय चित्रकला में सृजित पोत का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि आज की शैली प्रयोगवादी है।

कला की रचना में रचनाकार की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है। जिस प्रकार गायक को आलाप, कवि को शब्द, मूर्तिकार को मिट्टी आदि माध्यम अभिव्यक्ति में सहयोग देते हैं उसी प्रकार कलाकार के लिए रेखा, रूप, रंग, जैसे तत्वों से अभिव्यक्ति के लिए एक आधार चाहिए– वह है धरातल जिसके अभाव में सभी सामग्री सारहीन है। इस धरातल पर कलाकार अपने लिए अन्तराल निर्धारित करता है। प्राचीन शिल्प शास्त्रों में भी इसको महत्व दिया गया है। समरांगण सूत्रधार में भूमि बंधन, अभिलशितार्थ–चिन्तामणि में स्थान निरूपण तथा विष्णु–धर्मोत्तर पुराण में इसे स्थान कहा गया है। वास्तव में चित्रकार का कार्य क्षेत्र ही उसका अन्तराल होता है। यह अन्तराल छोटा, बड़ा, वर्गाकार, आयताकार–किसी भी प्रकार का हो सकता है जिसे कलाकार विशेष कुशलता से विभाजित कर आत्माभिव्यक्ति करता है। कला का प्रत्येक तत्व अपने अन्तराल से जुड़ा होता है। कलाकार अन्तराल को कई प्रकार से विभाजित कर उसमें रूपों का नियोजन करता है। किसी भी चित्र की रचना के समय कलाकार पहले चित्र भूमि को विशय की आवश्यकतानुसार बाँटता हैं, चित्रभूमि का यह विभाजन कलाकार दो प्रकार से करता है सम या असम। रेखाओं की सहायता से चित्रभूमि का इस प्रकार विभाजन कि बाँया और दाँया भाग समान हो सम विभाजन कहलाता है। मध्य कालीन यूरोपीय चित्रों में प्रायः इसी प्रकार के संयोजन को अपनाया गया है। सम विभाजन से सन्तुलन एवं शक्ति का भाव प्रदर्शित होता है। चित्र भूमि को कल्पना के आधार पर कलात्मक रूप से विभाजित करना असम विभाजन कहलाता है। उसमें कलाकार किन्हीं नियमों में नहीं बंधा होता। इस संयोजन में सृजनात्मकता को महत्व मिलता है तथा यह विभाजन सौनदर्य एवं क्रियाशीलता का भाव उत्पन्न करता है। सम तथा असम विभाजन के अतिरिक्त चित्रभूमि को बाँटने का एक सिद्धान्त है जो स्वर्णिम विभाजन के नाम से जाना जाता है जिसका विकास प्राचीन यूनानी कलाकारों द्वारा किया गया। चित्र में अंकित रूपों में आकर्षण का केन्द्र एक होता है जो सक्रिय अन्तराल में चित्रित किया जाता है। सहयोगी अन्तराल सहायक अन्तराल कहलाता है जिसमें अन्य रूपों को स्थान मिलता है। ये दोनों अन्तराल एक दूसरे पर आश्रित हैं। कलाकार अपने अन्तराल में पूर्णतः स्वतन्त्र होकर चित्रण करता है और वह अपनी भावनाओं तथा विषय के अनुसार उसे विभाजित करता है।

अन्तराल का विस्तार दो प्रकार से होता है लम्बवत् या क्षितिजवत् और इसमें आकृतियों की स्थिति होती है लम्बवत्, क्षितिजवत् या कर्णवत् कलाकार आकृतियों की दिशा के अनुसार अन्तराल के विस्तार का चयन करता है। कलाकार को कभी भी अन्तराल के केन्द्र में मुख्याकृति को नहीं बनाना चाहिए क्योंकि चारों दिशाओं से एक समान बल होने पर दृष्टि को थकान का

अनुभव होता है या यह भी कह सकते हैं केन्द्र में आकृति होने पर अन्तराल लगभग चारों ओर से बराबर भागों में बँटा हुआ प्रतीत होता है और सभी जानते हैं कि सम विभाजन में नीरसता होती है किन्तु मुख्याकृति को यदि केन्द्र बिन्दु से थोड़ा हटाकर बनाए जाए तो उसमें असम foHkkt u gksxk vkSj dykRedrk c<+sxhA आधुनिक युग में तो धरातल का क्षेत्र असीतिम हो गया है। ऐसी बहुत सी कम्पनियां हैं जो बने बनाए धरातल प्रस्तुत कर रही हैं। आज कलाकार धरातल बनाने में अपना समय बर्बाद नहीं करता क्योंकि जितने समय में वह धरातल बनाता है उतने समय में उसके संवेग और भावनाएं समाप्त हो जाती हैं। धरातल एक सहायक का कार्य करता है और कभी–कभी नयी तकनीक को जन्म देने में सहयोग भी देता है।

जिस प्रकार भोजन बनाते समय सामग्री के होने के बावजूद भी अगर किस प्रकार बनाना है, नहीं आता तो सामग्री व्यर्थ है, उसी प्रकार कलागत तत्वों का सृजन किस प्रकार किया जाए ये सभी सिद्धान्त के माध्यम से किया जाता है। ''काव्य और चित्र दोनों कलाओं में संगीत का तात्विक महत्व है चित्रकला में यह संगति विभिन्न आकृतियों या रंग, रेखाओं के अनुपात से निर्गत होती है'' कलागत तत्वों की ऐसी संगति जो संयोजन में एकता उत्पन्न करने में सहायक होती है, सामन्ज्स्य के नाम से जानी जाती है। सामन्जस्य सर्वप्रथम विचारों से प्रारम्भ होता है। कलाकार किसी एक मुख्य विषय या भाव को लेकर रचना प्रारम्भ करता है तत्पश्चात् उसके अनुरूप कलागत तत्वों का चयन कर अन्तराल विभाजन करता है। यह सभी तत्व आपस में एक दूसरे के पूरक होते हैं। सभी की सुसंगति ही चित्र में सामंजस्य उत्पन्न करने में सहायक बनती है। कलाकृति की रचना में चित्रकार रेखा, रूपाकारों, वर्णो, तानों आदि के माध्यम से सामन्जस्य स्थापित करता है। इन तत्वों का सम्बन्ध भावों से होता है जिस प्रकार का भाव होगा उसी प्रकार के तत्वों का प्रयोग सामन्जस्य स्थापित करता है। इन तत्वों का सम्बन्ध भावों से होता है। जिस प्रकार का भाव होगा उसी प्रकार के तत्वों का प्रयोग सामन्जस्य उत्पन्न करने में सहायक बनता है जैसे यदि शान्त रस के चित्र में कलाकर कोणात्मक रेखाएं, जटिल रूप तथा लाल, तीव्र रंगों का प्रयोग करता है तो वह सामन्जस्य विरोधी होगा। इसी प्रकार दीनता के भाव प्रदर्शित करने में शिथिल रेखाओं, शीतल रंगों तथा क्षैतिज रूपाकारों का प्रयोग सामन्जस्य उत्पन्न कर सकता है। चित्र में रेखाओं द्वारा सामन्जस्य उनके रेखांकन की दिशा पर भी निर्भर करता है। यदि किसी चित्र में लयात्मक गतिमय रेखाएं खीची गयी हों और बीच में कहीं कोणात्मक रेखाएं खीच दी जाए तो इससे सामन्जस्य की हानि होती है। वर्तिका से चित्रण करने पर कलम से अंकन कर दिया जाए तो वह दृष्टि को उद्वेलित करता है। इसी प्रकार विरोधी दिशाओं में खीचीं गयी रेखाओं के मध्य सन्धि रेखाओं के माध्यम से सामन्जस्य उत्पन्न किया जाता है क्योंकि सन्धि रेखाएं विरोधाभास को मधुर बनाती है। आकारों को चित्र में अंकित करते समय कलाकार को विशेष ध्यान रखना पड़ता है कि ऐसे रूपाकारों का प्रयोग करें जो भले ही स्वरूप, वर्ण, पोत, आदि

में भिन्न हो किन्तु व्यवहार की दृष्टि से निकट होने चाहिए। धरातल पर रूपाकारों का नियोजन इस प्रकार हो कि सक्रिय तथा सहायक रूप एक दूसरे के पूरक बन जाए। छोटे–बड़े सभी रूपाकारों को अन्तराल में यथास्थान बनाया जाना चाहिए। यदि अग्रभूमि में छोटे तथा पृष्ठभूमि में बड़े आकार बनाए जायेगें या सहायक रूपों को सक्रिय रूपों की तुलना में अधिक महत्व दिया जाएगा तो वहाँ सामन्जस्य का अभाव होगा। इसी के साथ कलाकार को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विषय के अनुरूप आकारों का चयन करे। शान्त, सरस वातावरण के लिये वर्तुल आकार तथा क्लिष्ट, जटिल, तनाव आदि विषयों के लिए कोणात्मक, त्रिभुजात्मक रूप सामंजस्य उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

कलागत तत्वों का चित्र में महत्व तभी सम्भव है जब उन्हें विचारों के अनुरूप प्रयुक्त किया जाए। कलाकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि विषय के अनुसार मानवकृतियों तथा उनकी वेशूभूषा आदि का चयन हो। जैसे यदि वृद्वावस्था के विशय में कोई बलिष्ठ युवक बना दिया जाए और ग्रामीण दृश्य में कोई 'जीन्स' पहने बाला बना दी जाए तो वहाँ सामन्जस्य विरोध होता है। चित्र में नीरसता को दूर करने के लिए कलाकार विभिन्न वर्णों की योजना बनाता है किन्तु जहाँ एक ओर कलाकार विषय के अनुरूप रंग लगाता है वहाँ उसे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि शीत वर्णों के साथ शीत तथा उश्ण वर्णों के साथ उष्ण वर्ण शीघ्र ही सामंजस्य उत्पनन करते हैं। इसी प्रकार बसन्त ऋतु आदि के चित्र में नारंगी, पीला, लाल आदि रंगों की विभिन्न तान सामन्जस्य पूर्ण प्रफुल्ल वातावरण प्रस्तुत करती है और करूण रस के चित्रण में नीला, काला आदि की धूमिल तान या श्वेत मिश्रित पीले की विभिनन तान विषयवस्तु को प्रस्तुत करने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त ग्लेजिंग द्वारा तथा एक ही परिवार के रंगों का चुनाव करके भी सामन्जस्य उत्पन्न किया जा सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामन्जस्य कला रचना के सिद्धानतों में अत्यधिक प्रमुख है। सामन्जस्य एवं सहयोग के साथ–साथ हम देखते हैं कि सन्तुलन एक ऐसा सिद्धान्त है जिसके माध्यम से चित्र के विरोधी तत्वों को व्यवस्थित किया जाता हैं। यदि कलाकार चित्र के एक भाग में कुछ आकृतियां अंकित करता है और अन्तराल के दूसरे भाग को रिक्त रहने देता है तो वह गलत होता है इसके लिए दूसरे भाग में कुछ आकृतियां बनाकर आकारों को संतुलित किया जाता है क्योंकि यदि अन्तराल के एक भाग में आकृतियां होगी तो वह स्थान भारी जटिल प्रतीत होगा और रिक्त स्थान क्रियाहीन। आकृतियों में उनके आकार के अनुरूप ही भार होता है। छोटी आकृतियों में कम तथा बड़ी आकृतियों में अधिक भार होता है। इसी प्रकार अलंकृत आकृतियों में अनलंकृत आकृतियों की तुलना में अधिक भार होता है। जब किसी अन्तराल में रूप नियोजित किया जाता है तो कलाकार उसे सन्तुलित करने हेतु यह ध्यान रखता है कि उसे किस स्थान पर चित्रित किया जाए।

दो रूप होने पर उन्हें केन्द्र से बराबर दूरी अंकित करना भी अनुचित होगा क्योंकि इससे चित्रभूमि में समविभाजन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है इसके लिए कलाकार को चाहिए कि एक आकार होने पर उसे केन्द्र से कुछ हट कर बनाया जाए तथा दो आकार होने पर एक को केन्द्र के निकट (बड़े आकार में) तथा दूसरे को सीमा रेखा के निकट (छोटे आकार में) बनाया जाए ताकि उसमें सन्तुलन के साथ–साथ कलात्मकता तो हो ही साथ ही साथ परिप्रेक्ष्य के नियम का भी पालन होता है। रेखा में दिशा निर्देशन की शक्ति होती है। यह शक्ति ही उसका भार प्रदर्शित करती है। एक दिशा में जितनी रेखा खींची जाती है। भार बढ़ जाता है अतः दूसरी दिशा में आवश्यकतानुसार रेखाएं खींच कर उन्हें सन्तुलित किया जाता है। सन्तुलन के साथ–साथ चित्र में एक ऐसा तत्व है गति, यदि यह नहीं होती तो चित्र स्थिर प्रतीत होता है। एक आकृति यदि दोनों हाथ नीचे करके सीधी मुद्रा में चित्रित है और एक आकृति किंचित् भंगिमा लिए हुए कुछ क्रियाशील अवस्था में तो दूसरी वाली आकृति अधिक कलात्मक तथा गतिशील मानी जाती है जो चित्र के सौंदर्य में वृद्धि करती हैं। उसी प्रकार चित्र के तत्वों का इस प्रकार अंकन कि दर्शक की दृष्टि मुख्य केन्द्र बिन्दु से होती हुई अबाध गति से सम्पूर्ण चित्र पर धूम जाए, यही गति या लय है। लय के लिए अग्रेंजी भाशा का "Rhythm" शब्द प्रयुक्त होता है जिसकी उत्पत्ति ग्रीक Rhein से हुई है जिसका अर्थ प्रवाह है। लय का चित्रकला में विशेष महत्व है क्योंकि दर्शक की दृष्टि यदि एक ही दिशा में बढ़ती जाती है तो नीरसता उत्पन्न होती है किन्तु यदि इसमें कुछ कलात्मकता लाते हुए रूपों को ऊपर नीचें दाएँ–बाएँ गतिशील रूप में चित्रित किया जाता है तो वहाँ सरस लयात्मक वातावरण क्रियान्वित होता है। यदि किसी चित्र में प्रकृति चित्रण क्षैजित, सरल रेखाओं से किया जाता है और दूसरे में गतिशील रेखाओं के माध्यम से तो दूसरे वाला चित्र अधिक आकर्शित करता है क्योंकि उसमें गतिशील वक्र रेखाओं के माध्यम से लय की सृष्टि हो जाती है।

प्रभाविता के द्वारा दर्शक की दृष्टि सर्वप्रथम मुख्य आकर्षण के केन्द्र पर पहुँच जाती है तत्पश्चात् अन्य आकृतियों पर विचरण कर सम्पूर्ण चित्र का रसास्वादन करती है। प्राचीन भारतीय चित्रों में इस सिद्धान्त का बहुत सुन्दरता पूर्वक प्रयोग किया गया है। जैसे अजन्ता के पद्मपाणि बोधिसत्व', मार विजय, राहुल समर्पण तथा बाघ के 'समूह नर्तक' के चित्रों में प्रभाविता के सिद्धानत से दर्शक की दृष्टि सर्वप्रथम केन्द्रित आकृति पर तो जाती ही है। साथ ही इससे चित्र में नीरसता भी समाप्त होकर आकृतियों में सहजता आती है। प्राचीन तथा परम्परागत चित्रों में कलाकारों ने विविधि प्रकार से इस नियम का पालन किया है। कहीं मुख्याकृति को केन्द्र में तथा अन्य आकृतियों को उसके चारों ओर बनाया है। कहीं मुख्याकृति को एक ओर तथा अन्य आकृतियों को विपरीत दिशा में बनाया है। कहीं विपरीत रंग की पृष्ठभूमि का प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं प्रमाण के नियमों को नकार कर देवता अथवा महान् व्यक्तियों आदि को आकार में बड़ा बनाया गया है तथा उनके सिर के पीछे प्रभावमण्डल

दर्शाया गया है। साथ–साथ इन कलाकारों ने मुख्याकृति में अन्य आकृतियों की तुलना में प्रखर रंगों को लगाया है तथा उनके विवरणों को भी सूक्ष्मता से दर्शाया है जिस प्रकार आकार को बड़ा बना कर उसमें अधिक भार सृष्टि की जाती है उसी प्रकार कभी–कभी मुख्याकृति को अलंकृत करके भी प्रभाविता के सिद्धान्त का पालन कलाकार करता है।

कलाकार सहयोग, सामन्जस्य, सन्तुलन के आधार पर रूपों का नियोजन धरातल पर करता है किन्तु इसमें इन रूपों को किस माप में बनाया जाए इसका निर्धारण प्रमाण के अन्तर्गत किया जाता है। आकृतियों का तुलनात्मक माप अनुपात को प्रस्तुत करता है। प्रकृति के प्रत्येक तत्व में अनुपात दिखायी देता है मानव के शरीर में भी अनुपात है। इसी प्रकार नैसर्गिक अनुपात के साथ–साथ मानव निर्मित रचनाओं में भी अनुपात की अपेक्षा की जाती है। कलाकार जब चित्र रचना आरम्भ करता है तो उसके लिए सर्वप्रथम वह निर्धारित करता है कि उसके अन्तराल की लम्बाई चौड़ाई क्या हो। आकृतियों का परस्पर अनुपात क्या हो। क्योंकि प्रत्येक अवयव चित्र के सम्पूर्ण प्रभाव को परिवर्तित कर सकता है। आकृतियों के साथ–साथ चित्र में प्रयुक्त वर्णों का भी विषय की आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जाता है। किसी एक वर्ण को प्रमुख मान कर सहायक वणों को यथासम्भव स्थान दिया जाता है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों में अनुपातिक सम्बन्ध रहता है जिसे विद्वानों ने 7 1/2 तालों में बाँटा है। एक ताल एक सिर है। माइकलेन्जलों तथा अन्य पाश्चात्य कलाकारों ने मानव शरीर को 8 तालों में विभाजित किया है।